Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities, Vol 1 pp. 17-21, 2006 DOI: 10.51220/hjssh.v1i1.4

गढ़वाली नैणगीतों की पर्यावरणीय चेतना

मृदुला जुगरान व प्रीतम अपछ्यांण*
हिन्दी व आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल वि.वि., श्रीनगर गढ़वाल
***राजकीय इंटरमीडिएट कॉलेज, दूनागिरी, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड**

भारत की आत्मा लोक में निवास करती है। यही कारण है कि अपने आविर्भाव से अब तक भारतीय संस्कृति की सत्ता पूर्णत: सुरक्षित है जब कि यूनान, मिश्र, रोम और चीन की प्राचीन संस्कृतियां लुप्तप्राय: हो चुकी है। भारत गांवों का देश है। गांवो का जन-जीवन अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं आचार विचारों की सुरक्षा के लिए सदियों से अपने लिखित साहित्य से अधिक, अलिखित लोक साहित्य का ऋणी है। लोक जीवन की सांस्कृतिक परम्परा इसी से रक्षित है।[1]

उत्तराखण्ड हिमालय अनादिकाल से भारत की गौरवगाथा का अग्रगण्य प्रक्षेत्र रहा, युग-युगान्तरों की समस्त ज्ञान वीथिका का वाहक बना रहा। इसने ज्ञान गंगा के ठांवों को सतत् प्रवाहमान बनाये रखा। यहां की हर चोटी, हर घाटी में देवताओं का निवास है। सांस्कृतिक विविधताओं, लोकमानस और लोकप्रज्ञा के मानवेत्तर ऊर्जास्थलों के रूप में यह विश्व का अनोखा भूखण्ड है।

लोक के अपने अति स्थानीय देवी-देवता होते है। जिनके स्वतंत्र अस्तित्व, अस्मिता और प्रभावक्षेत्र हैं। इन्ही भौगोलिक परिच्छेदों में उनकी गीत व गाथाएं पलती हैं तथा लोकगीतों में ही उसकी विभिन्न संवेदनाओं व चेतनाओं के दर्शन मुखरित होकर स्वर लेते हैं यहाँ कोई भी ऐसा अवसर नहीं जो गीतों के बिना पूरा माना जा सके। वस्तुत: गीत सभी अवसरों के लिए एक अनिवार्यता हैं। इस विद्या ने जीवन के हर पक्ष को छुआ है। यहां जन्म के अवसर पर मंगलगीत भी गाये जाते है और मृत्यु के अवसादपूर्ण अवसर पर शोकगीत भी। लोकगीतों से अलग पहाड़ी लोक जीवन की कल्पना ही सम्भव नहीं है। विषम और दुसाध्य प्राकृतिक परिस्थितियों में जीवन को गतिमय बनाये रखने के लिए जितनी आवश्यकता यहां भोजन, पानी और हवा की है, मानसिक संतुलन के लिए उतनी ही आवश्यकता यहाँ लोकगीतों की है।[2]

नैण या नाग कन्याओं की गाथा का भूगोल उत्तरांचल राज्य के गढ़वाल में स्थित है। यद्यपि कई स्थानों पर यहां नागवंशी और नाग संबंधी नामकरण हैं, परन्तु नाग कन्याओं की यात्रा व पूजा विधन का आयोजन क्षेत्र सीमित है। रिसासौ भूमि कौब के चारों ओर की पट्टियों में नैण का महातम्य फैला है जो वर्तमान राजनैतिक सीमाओं के अनुसार चमोली जनपद के विकासखण्ड नारायणबगड़ कर्णप्रयाग, थराली व देवल तक विस्तृत है।

नैणगाथा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

नैणगाथा गढ़वाल की पारम्परिक कथा है। लोक में देवकोप, दुर्भिक्ष या 'उल्टा चलन' होने पर

©SHARAD

देवताओं और मानवों की सभा हुई। इस सभा में तय किया गया कि इस कोप से बचने के लिए यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ हेतु अग्नि, जल, गाय व कन्याओं की आवश्यकता हुई। अलग-अलग क्षेत्रों से ऋषियों को इन्हें लाने हेतु निर्दश दिये गये। महर्षि झिगरखंडा अग्नि उपासक थे इसलिए वे अग्नि लेने भेजे गये। महर्षि नारद को गायों के लिए और महर्षि भाँकुड़ा को कन्याओं हेतु भेजा गया। भाँकुड़ा ऋषि नागों के गुरु थे। अपने यजमान की नौ कन्याओं को न्योतकर वे रिसासौ भूमि कौब लाये। यज्ञ सम्पन्न हुआ। देवकोप से समाज को मुक्त मिली परन्तु अपरिहार्य कारणों से वे नागलोकी कन्याएं वापस अपने देश नहीं जा सकी। लोक में अलग-अलग ग्रामों में उन्हें स्थापित किया गया। प्रत्येक बारह वर्ष के बाद एक-एक बहन की देवयात्रा की परम्परा आरम्भ हुई। अलौकिक होने के कारण इन कन्याओं को लोक ने आदिशक्ति का अवतार घोषित करके उन्हें माता का स्थान दिया। देवकोप के समय धरती का रूप क्या हो गया था और देवकोप समाप्त होने के बाद प्रकृति कैसी हो गयी, लोकगीतों ने अपने पर्यावरण के इस रूप को गंभीरता से देखा। लोकप्रज्ञा की चैतन्यता से कई पक्ष गाथा में गुंथते गये और पीढ़ी दर पीढ़ी वर्तमान तक चले आ रहे हैं।

नैगणीतों में पर्यावरणीय चेतना

नेणगीतों की प्रज्ञा में कई प्रकार के बोध हैं, स्वयं किये गये अनुभव जिन्हें लोक कवियों ने गीतों में ढालकर जन सामान्य से जोड़ दिया है। नैण, नागणी कन्याएं नाग-पत्नी नहीं है। क्योंकि वे न तो एक मात्र है और न गीतों में ऐसा कोई प्रसंग है। बालिका के तौर पर नारी सम्मान का यह बोध गीतों की चेतना का आरम्भ है।

'पर्यावरण' शब्द यद्यपि एक आधुनिक 'बजवर्ड' हो गया है फिर भी इसकी प्रांसगिकता से न तो कोई समझौता हो सकता है और न इसकी उपेक्षा की जा सकती है। पर्यावरण के विविध पक्षों पर वैज्ञानिकों ने पर्याप्त शोध किये हैं व किये जा रहे है। यह समग्रता की अभिव्यक्ति है। किसी एक पक्ष की विशेषज्ञता या उपचार से पर्यावरण के सभी पक्षों की न तो विशेषज्ञता प्राप्त की जा सकती है और न एकपक्षीय उपचार।

पारिस्थितिकी पर गम्भीर अध्ययन डॉ0 ई0पी0 ओडम (1994) ने किये। उनके अनुसार पर्यावरण में प्रत्येक जीवधारी दूसरे जीवधारी पर निर्भर रहता है। प्रत्येक जीव किसी दूसरे जीव का भोजन है तथा प्रत्येक जीव को प्रकृति की व्यवस्थाओं के अन्दर रहना पड़ता है।[3] पर्यावरण की समस्त व्यवस्थाएं ऊर्जा के कार्यकारी रूप से चलती है। सम्पूर्ण ब्रह्मांड में एक फूल के टूटने से एक सितारे की स्थिति डगमगा जाती है। पर्यावरण में इन्ट्रोपी (वह ऊर्जा जो किसी कार्य के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकती) बढ़ने से परिस्थितियां गड़बड़ा जाती है और कई प्रकार के विक्षोभ पैदा हो जाते है।[4] इन्हीं विक्षोभों को वर्तमान में पर्यावरणीय समस्याओं के नाम से जाना है।

लोक ने वैज्ञानिक नजरिये से पर्यावरण का अध्ययन नहीं किया। परन्तु अपनी निरीक्षण शक्ति

ओर मानवीय बोध के कारण इन परिस्थितियों को वह समझता गया। अपने गीतों मे लोक ने पर्यावरण के कई पक्षों जैसे-जल, वनस्पतियां, भू-आकृतियों, मौसमी, हलचलों को समाहित किया। पर्यावरण की दुर्दशा को सटीक अभिव्यक्ति देकर लोकचेतना वर्तमान संदर्भो में अधिक प्रासंगिक हो गयी। नैणगीतों की पर्यावरणीय चेतना कई रूपों में अभिव्यक्त हुई है।

लोक मान्यता है कि जल, विष्णु का प्रतीक है। उसकी अभ्यर्थना की गयी कि वह शुभकारक, मंगलदायक एवं कल्याणकारी हो। 'धरमी मैत्यूलों माता प्रयागों नह्वायों' में आये धरमी मैती को प्रयाग की सुरक्षा का अग्रदूत मानने के कारण 'धरमी' या धर्माचरण करने वाला सम्बोधन मिला है। मायके पक्ष का जो क्षेत्रवासी अपने जलस्रोतों, उद्गम-संगमों और नदी-गधेरों के धर्म को नहीं समझता है, इनकी सुरक्षा व स्वच्छता का प्रबंध नहीं करता है वह मैती होने पर भी 'धरमी' कैसे हो सकता है।

लोकगीत पर्वतों के हिमाच्छादित शिखरों और विस्तृत घास के मैदानों को नहीं भूल सकता इसलिए नैणगीतों ने 'नंदा घुंघटी' और बेदनी गुग्याल का वर्णन किया है। नैण बहनों के खेल, सिंलिंग वृक्ष के नीचे विश्राम करना, जई की बेल के नीचे रहना, भेड़पालक का ऊन का वस्त्र दौखा आदि पर्वतीय पर्यावरण के अभिन्न अंग है। स्थानीय लोगों का नैण को चावल, अखरोट देना स्थानीय पर्यावरण के उपयोग का उदाहरण है।

पर्यावरणीय चेतना का एक पक्ष नेणयात्रा का समय भी है। यात्रा भाद्रपद में आरम्भ होती है और फाल्गुन में समाप्त होती है। इन छः सात महीनों में मौसम बरसात से बसंत तक बदल जाता है। भक्तिभाव रखने वालों के लिए यह अपने पशु, खेती व सहोदरों की शुभकामना का मंच होता है। नया अनाज तैयार हो जाने के कारण यात्रीगणों के भोजन की समस्या भी नहीं रहती है। फाल्गुन आते-आते वातावरण बसंती उल्लास और प्रभाती उजास से महक उठता है। धीरे-धीरे गर्मी बढ़ने लगती है। तमाम तरह के प्रवासी पक्षी पहाड़ में आकर अपने सुर छेड़ने लगते हैं। वृक्षों में नया जीवन संचारित होने लगता है। पत्र-पुष्प प्रस्फुटित होते हैं। मनुष्यों में भी उल्लासमय आशाएं खिलने लगती हैं। कृषि कार्यों के समाप्त होने पर यात्रा आरम्भ होती है तथा अगली फसल की तैयारी तक समाप्त हो जाती है।

वर्तमान में पर्यावरणविद मानते है कि पृथ्वी को पर्यावरणीय दुष्प्रभावों से बचाना है तो यहाँ वनस्पतियों का जिन्दा रहना सबसे अधिक आवश्यक है। धरती के जिस छोर पर नदी-नाले, पेड़-पौधे, पानी के स्रोत, गायों का दूध और खेतों की हरियाली सूख गयी हो वहां की पर्यावरणीय परिस्थितियां इतनी विपरीत हो गयी कि मनुष्य तो दूर, अन्य जीव जन्तुओं का जीवन भी संकट में पड़ गया लोकगीत ने स्थितियों का वर्णन किया-

नवखण्डा पृथ्वी मा ह्वेगा उल्टो चलणा/ नदी सुखा नाळा यो सुकणा बैठीगा, डैळी सुकी बोटी तु सोचणा बैठीगा/ पैणी गा सोतरा गा सोतरा यो सुकणा बैठीगा/ गायी सूको दूध या खेती हरीयानों/ सैट्यों गा पुंगड़ों मा पसौडू जरमो/ झंग्वौरा मयाळा यो सौझग्वौरा ह्वौयो/ कोदै गी पुंगड्यो मा झडुवा जरमो/ उल्टों चा चलना यो वे उल्टो बोलणो/ कपैळी नी चा भागा यो गिचा नी सूबाक / गगना मण्डला या

बैठीगा हीलणो/ वे साता समुन्दरा यो बैठीगा सूकणो/ शिबा गो कैलाश यो बैठीगा हीलणो/ बणचरा जीबा यो नगरूं बसीगे/ नगरूं गा राज़ा यो जगळू भाजीगे/ रिष्यूनै की झेल्यो यो वे आगा लागीगे[5]।

(नवखण्ड पृथ्वी में उल्टा चलन हो गया है। नदी-नाले सूखने लगे हैं, पृथ्वी सूखने लगे है और ईश्वर सोच में पड़ गया है। पानी के स्रोत सूखने लगे। गायों का दूध और खेतों की हरियाली सूख गयी है। धान के खेतों में 'पसाडा' नामक घास, सहुंवा के खेतों में झड़ जाने वाला सहुंवा और मंडुवे के खेतों में 'झडवा' प्रजाति का मंडुवा हो रहा है। इस उल्टे चलन के समय लोगो का बोलना भी उल्टा हो रहा है। किसी के मस्तक पर भाग्य नहीं और मुंह में सुबाणी नहीं है। सात समुद्र सूखने लगे हैं, गगन मण्डल, शिव का कैलाश हिलने लगा है। ऋषियों की कुटियों और आस-पास की घासों में आग लग गयी है। जंगली जानवर शहरों की ओर और शहरों के बासिन्दे वनों की ओर भाग रहे हैं।)

वर्तमान की पर्यावरण परिस्थितियों की बारीकियां इस लोकगीत में सजीव तौर पर प्रकट होती है। शिव के कैलाश के ग्लेशियर इतनी तेजी से पिघल रहे है कि वह हिलने समान हो गया है। जल स्रोतो के सूखने से पूरा विश्व चिंतित है। दावाग्नि और मनुष्यों के लोभ पर किसी का बस नहीं बचा है। ऐसे में जीवन के अस्तित्व का संकट है। पर्यावरण की ये वर्तमान दशाएं और लोकगीत की अभिव्यक्ति का साम्य, लोकप्रज्ञा की पर्यावरण चेतना के मूर्त रूप हैं।

नैणगीतों ने मौसमों, विशेष तौर पर बसन्त का सजीव वर्णन किया है। ताप, नमी, ऊष्णता, हवाएं आदि पर्यावरणीय दशाओं का विवरण लोक की पर्यावरण चेतना को प्रतिबिम्बित करते है। रंगाभंगा दिना आया रंगाभंगी ऋतु मैत्यो हरिला कूंजो/ रंगभंगी ऋतु ऐगी हो उलामुला मासा मैत्यो हरिला कूंजो/ उलामुला मासा आया चुलामुला बारा मैत्यो हरिला कूंजो' (हे मेरे मायके वासियो अलसाये दिन और अलसायी ऋतु आ गयी है। उमंगोंयुक्त महीने और मोहक दिन आ गये है। कूंज नामक पौधे पर हरियाली छा गई है।

नैणगीत कई वनस्पतियों का वर्णन करते हैं और प्रकारान्तर से जन सामान्य को उनकी सुरक्षा और सम्मान हेतु सचेत करते हैं। डिपैळी, कनैळी, मंगा पिंउली फूलली मैत्यो हरिला कूंजो/ अखोड़ै गी सायों मा घुघुती घूरली मैत्यो हरिला कूंजो/ नागीलोकूं मंगा वो घामा नीचा हाळो मैत्यो हरिला कूंजो/ चिड़िया नी बासैनी वे चीला नी चीलाना मैत्यो हरिला कूंजो (खेतो की मेडों पर पयोली (*Reinwardtia Trigiena*) नामक वनस्पति के सुन्दर पीले फूल खिलेंगे, अखरोट के वृक्ष की टहनियों पर फाख्ते अपने बोल सुनायेंगे। उस नागलोक में न तो धूप है और न ही तुषार। वहां न तो चिड़िया बोलती है और न चील ही घूमती है।) कहने से गीत की वृक्षों, पुष्पों और पक्षियों के प्रति संवेदनशीलता झलकती है। नैण बहनों का वापस नागलोक न जाने का संकल्प पर्यावरणीय स्थितियों और मोहक धरातलीय संरचना के कारण है वे अपने गुरू से कहती हैं :- यहां कई प्रकार के रस हैं, पुष्प है, अन्न है दुधारू पशु है (यख बारा रस हुना/ यख बारा फूल हुना/ अनेक प्रकार का नाजै ह्वल/ लैणीको लवाद बखड्यों को सोड़ै ह्वल)। हम नागलोक जायेंगे तो हम पर फूलों की, फलों की, वनस्पतियों की, जीव-जन्तुओं

की, मनुष्यों की गंध आयेगी। स्पष्ट है कि ये विशेषताएं सिर्फ पृथ्वी के पर्यावरण की है और नैणगीत इन पर्यावरणीय पक्षों की श्लाघ्य विवेचना करते हैं।

निष्कर्ष :-

नैण के गढ़वाली लोकगीत पर्यावरण की प्राचीन दशाओं को वर्तमान आधार देते है। ये गीत पर्यावरण को ढांचागत वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत नहीं करते है, बल्कि समाज की चेतना ओर अवलोकन के अनुभवों को सामाजिक बनावट के साथ सामने लाते है। पर्यावरण यहां एक 'क्लासरूम सब्जेक्ट' न होकर समस्त जीवधारियों के 'इंट्यूशन' से जुड़ा है। इसमें पृथ्वी पर जीव के सभी सरोकार शामिल होते हैं और उल्लेखनीय रूप से इसके परिणाम ठीक वहीं आते है जो वर्तमान में पर्यावरण सम्बंधी अध्ययनों द्वारा सिद्ध हो रहे है। नैणगीतों का बारा रस और बारा जीव कहना वर्तमान की जैव विविधता का सामाजिक अनुवाद है। आज की पर्यावरणीय समस्याओं के लक्षण जिस सटीक और मार्मिक ढंग से नैणगीतों में अभिव्यक्त हुए है, उतनी सहजता और सरलता से ये वैज्ञानिक भाषा में शायद ही हो पाते।

नैणगीतो की पर्यावरण चेतना इसलिए और अधिक महत्त्पूर्ण हो जाती है क्योंकि यह मनुष्य को हार्दिक और मार्मिक रूप से संवेदना देती है। इसमें आंकड़ों और प्रयोगों की कोई जुगत नहीं है। बल्कि पर्यावरण को प्रकृति के निकट ले जाने, उसके अनूरूप जीवन जीने और सारी पृथ्वी को जीवित रखने का आह्वान है। भारत के संदर्भ में 'लोकों' की यह चेतना संभालने की वस्तु है। संभवत: पर्यावरण रक्षा का अंतिम उपाय इन्ही लोकचेतनाओं से नि:सृत होगा।

संदर्भ :-

1- भजन सिंह 'सिंह' 1980, सिंहनाद, पृ. 13
2- ओमचन्द हाडा, 1984, लोकगीत, पश्चिमी हिमालय की लोक कलाएं, पृ. 31
3- E.P. Odum, 1994, Living in Nature's System
4- Kupchella & Hyuand 1961, Environmental Science
5- प्रीतम सिंह, 2005, गढ़वाली नैणगीतों की लोकप्रज्ञा का अध्ययन, डी0 फिल0 शोध प्रबन्ध हे. न.ब. ग.वि.वि. श्रीनगर गढ़वाल